14 स्कूल–प्रमुख की स्वायत्तता और जवाबदेही

निवेदिता बेडदुर



1982: केन्द्रीय विद्यालय का एक आम दिन। दिन की शुरुआत उपस्थिति रजिस्टर पर दस्तखत करने और कक्षा रजिस्टर लेने के लिए आखिरी मिनट की खेंचा–खेंची से होती है। आप एक ओर खड़े होकर शिक्षकों को जल्दी–जल्दी अपनी कक्षाओं की ओर जाते और फिर प्रार्थना सभा में पहुँचते देखते हैं। इसी बीच कोई अपनी छुट्टी का आवेदन–पत्र लेकर आता है और आपका ध्यान दूसरी ओर उलझा देता है। गतिविधियों के प्रभारी दिन की घटनाओं के बारे में आपको जानकारी प्रदान करते हैं। सभा समाप्त होती है। फिर देर से आने वालों से बात करना, कक्षाओं पर ध्यान देना, पढ़ाना, पालकों की बात सुनना, दफ्तरी मसलों को देखना, समारोहों, परीक्षाओं, पालक–शिक्षक बैठकों की योजना तैयार करना।

ऐसे दिन भी थे जब जीवन शान्तिपूर्ण था – और स्कूल आनन्दपूर्ण स्थान। प्राचार्य और शिक्षक स्कूल के लिए, अपने लिए और विद्यार्थियों के लिए सामर्थ्य–विकास के उपाय निकालने हेतु एक साथ मिलकर काम करते थे। स्कूली सुधार सभी कर्मचारियों की संयुक्त जिम्मेदारी होती थी। तब प्राचार्य की भूमिका क्या रहती थी? प्रबन्धक होने से ज्यादा कुछ नहीं।

दाखिले के नियम तय थे, पाठ्यचर्या और सह–पाठ्यचर्या सम्बन्धित गतिविधियों के मुख्य दिशा–निर्देश दे दिए जाते थे, प्रशासनिक एवं वित्तीय कार्यप्रणालियों की स्पष्ट पाबन्दियों समेत रूपरेखाएँ बनी रहती थीं। इन सीमाओं के दायरे में रहते हुए प्राचार्य निर्णायक अधिकारी होता था – 'परिवार का वास्तविक मुखिया'। वह कक्षा की गतिविधियों, तथा सह–पाठ्यचर्या गतिविधियों के दस्तूर सम्बन्धी निर्णय लेता था। स्कूल का वातावरण और संस्कृति, कक्षा की गतिविधियों में अपनाए जाने वाले नवाचार, सीखने–सिखाने के सिद्धान्त, विद्यार्थियों के लिए सलाह–मशविरा तथा कर्मचारियों का पेशागत विकास – इन सभी बातों का निर्धारण और इनसे जुड़ी समस्याओं का निराकरण स्कूल के स्तर पर ही किया जाता था। स्कूल–प्रमुख की जवाबदेही दसवीं और बारहवीं कक्षाओं के नतीजों तथा वित्तीय कार्यप्रणाली और व्यवहार से तय होती थी। पर असली आकलन तो विद्यार्थियों और पालकों द्वारा किया जाता था। स्कूल के कामकाज पर बहुत कम निगरानी रहती थी, उसमें बहुत कम दखलंदाजी की जाती थी। स्वायत्तता ज्यादा हुआ करती थी। पर क्या जवाबदेही भी ज्यादा थी?

> *ज्यादा अपेक्षाएँ, ज्यादा निगरानी, ज्यादा कार्यशालाएँ, ज्यादा प्रशिक्षण, ज्यादा पत्र, ज्यादा उत्तर। प्राचार्य सूचना–वितरण की मशीन बन गए।*

15 साल बाद: एक क्रान्ति हुई। अप्रत्यक्ष रूप से, धीरे–धीरे, दबे पाँव कक्षा की गतिविधियों और कार्यपद्धतियों और स्कूल के वातावरण में एक बदलाव आया। ज्यादा अपेक्षाएँ, ज्यादा निगरानी, ज्यादा कार्यशालाएँ, ज्यादा प्रशिक्षण, ज्यादा पत्र, ज्यादा उत्तर। प्राचार्य सूचना–वितरण की मशीन बन गए। दाखिले के नियम सख्त कर दिए गए। भिन्न–भिन्न तरह के आँकड़े और तथ्य लगातार भेजते रहना जरूरी हो गया–जैसे आधारभूत ढाँचे, दाखिले, बच्चों को स्कूल में बनाए रखने से सम्बन्धित तथ्य; लिंग, धर्म, जाति सम्बन्धी और मूल्यांकन, आकलन आदि से जुड़े आँकड़े। कम्प्यूटर क्रान्ति ने सूचना लेने–देने के ढंग को पूर्णतः बदल कर रख दिया। अब हमें सूचनाओं और आँकड़ों को ई–मेल करके या फैक्स द्वारा भेजना पड़ता था और टेलीफोन पर उन्हें दोहराना पड़ता था। यह तकनीकी दानव धीरे–धीरे हमारे स्कूल को घेरता जा रहा था। इसकी कीमत चुकाई वक्त ने – प्राचार्यों के पास कक्षाओं में जाकर वहाँ का हाल जानने का वक्त नहीं रहा। वे मुश्किल से ही अपने विद्यार्थियों और कर्मचारियों के साथ दैनिक रूप से सम्पर्क बनाए रख पाते थे।

एक क्षेत्र में केन्द्रीय विद्यालय संगठन को स्वायत्तता प्राप्त थी और उसके बारे में सोच बिलकुल स्पष्ट थी। यह क्षेत्र था कक्षा में गतिविधियों का। प्राचार्य ही सर्वदा प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के निदेशक थे। सबसे पहले वे खुद इस ओर अभिमुख होकर इन पाठ्यक्रमों पर अपने हाथ माँजते थे।

2002 : स्कूल कैसा दिखता है, यह महत्वपूर्ण हो गया। केन्द्र ने अपना बटुआ खोल दिया। केन्द्रीय स्तर पर प्रशासनिक निर्णय लिए गए और प्राचार्य की झोली में ढेर सारा पैसा आने लगा। सपने सच होने लगे। लॉबी सँवरने लगीं, प्राचार्य अपने कमरों के लिए कालीन और सोफे खरीदने लगे, बड़े मनोहर तरीके से उनके कमरे सजने लगे! कक्षाएँ उजली और हवादार दिखना शुरू हो गईं। हम निर्माण कार्यों के लिए मजदूरों को ठेके पर लगा सकते थे और आधारभूत सुविधाओं के विस्तार के लिए धन दे सकते थे। आधारभूत सुविधाओं से सम्बन्धित स्वायत्तता तो आई लेकिन वह अपने साथ समस्याएँ भी लाई –ज्यादा वित्तीय प्रक्रियाएँ – ज्यादा वित्तीय जवाबदेही!

स्वायत्तता का अर्थः कठिनाइयों से गुजरते हुए सीखे गए सबक

गुजरात की काँख में मौजूद एक नन्हा सा द्वीप है दीव। यह एक शान्त पर्यटन स्थल है, जहाँ बस एक कलैक्टरेट, मछुआरे, पुर्तगाली और भारतीय पासपोर्ट वाले देशज आंग्ल–भारतीय लोग और भारतीय वायु सेना द्वारा संचालित एक हवाईपट्टी है। यहाँ का केन्द्रीय विद्यालय दीव और हवाईअड्डे के बीच फुदम नामक गाँव में स्थित है। यहाँ पहली से लेकर दसवीं तक 300 से अधिक विद्यार्थी पढ़ते थे। यह स्कूल फुदम के सरकारी हाईस्कूल से उधार लिए गए 5 कमरों में लगता था। इस सरकारी स्कूल के 4 से 5 कमरों में दिन के अलग–अलग समय पर शिफ्टों में दो सरकारी स्कूल भी लगते थे। बाहर से ये कमरे जनजातीय झोपड़ियों जैसे दिखते थे – दीवारें जर्जर हो रही थीं, उनका प्लास्टर झड़ रहा था। दो कक्षाएँ एक ही कमरे में लगती थीं और एक, स्कूल के दफ्तर में। बारिश के दिनों में समुद्र का पानी स्कूल में घुस जाता था और पीने का पानी उपलब्ध नहीं रहता था। फिर भी दसवीं कक्षा के मेरे पहले बैच ने मुझे गौरवान्वित किया। सरकारी स्कूल और केन्द्रीय विद्यालय कमरों को सांझे तौर पर इस्तेमाल करते थे। स्थानीय प्रबन्धन भी मिल–जुल कर होता था।

दीव के इस केन्द्रीय विद्यालय में शिक्षकों और कर्मचारियों की भी कमी थी। इसका एक कारण यह था कि फुदम गाँव में बाहरी लोगों को रुकने की अनुमति नहीं थी। फुदम में केवल गृहणियाँ रहा करती थीं। उनके पति साल के अधिकांश समय घर से दूर जहाजों पर रहते थे। गाँव में अलिखित नियम था कि कोई भी घर किराए पर नहीं दिया जाएगा। इसलिए शिक्षकों को मजबूरी में काफी दूर रहना पड़ता था। गाँव के बड़े बुजुर्गों के साथ इस बाबत बातचीत करने के कई प्रयास किए जाने के बावजूद, शिक्षकों के लिए रहने के स्थानों का बन्दोबस्त नहीं हो पाया, इसलिए स्टाफ की कमी बनी रही। जाहिर है कि अप्रशिक्षित अस्थायी स्टाफ के साथ स्तरीय शिक्षा दे पाना दूर का स्वप्न था। टूटी–फूटी साइकिल पर स्कूल आने वाले एक शिक्षक अपने परिवार से मीलों दूर रह रहे थे। वे बस अपने तबादले का इन्तजार करते रहते थे। पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध नहीं थीं।

इस स्थिति में कई सवाल उठते हैं। यदि मेरे पास स्वायत्तता होती तो क्या मैं कोई व्यवहार्य समाधान ढूँढ़ पाती? क्या मैं स्कूल को किसी अन्य जगह पर स्थानान्तरित करने का निर्णय ले पाती? स्वायत्तता का अभाव हमारी सम्पूर्ण स्कूल टीम द्वारा स्थिति से निपटने के लिए सोचे गए समाधानों के आड़े आ रहा था। मगर इस स्थिति में भी हल निकालने का प्रयास रहा। हमने एक साथ मिलकर उन लोगों की मदद की जो तबादलों के सहारे अपने–अपने परिवारों के करीब जाना चाहते थे। जो वहाँ बने रहे, उन्होंने एकजुट होकर काम किया। स्कूल के समय में थोड़ा फेरबदल किया गया। शिक्षकों ने बहीखातों का काम और वित्तीय मसले अपने हाथ में ले लिए। किसी भी शिक्षक को स्कूल के बाद रोककर नहीं रखा गया। 'पद', 'उपाधियों' जैसे मसले गायब हो गए। एक प्राइमरी शिक्षक, जिनकी गणित की समझ अच्छी थी, दसवीं कक्षा के नए बने बैच को पढ़ाने लगे। प्राचार्य का कोई दफ्तर नहीं था। मैं नवीं कक्षा के साथ बैठकर, उनसे घिरी रहकर अपना काम करती थी।

दीव में स्वायत्तता के न होने से समस्याएँ थीं। मेरे पास न कमरे थे, न पानी, न शौचालय, न कर्मचारी – और आर्थिक सीमाएँ भी थीं। लेकिन इच्छाशक्ति थी। बी.ई.ओ. ने एस.एस.ए. निधि के माध्यम से मेरे लिए रिकॉर्ड समय में दो कमरे निर्मित करवा दिए! मैंने अपने पति से मदद ली और एक स्थानीय बढ़ई से बहुत सस्ते में सभी बैंचें सुधरवाईं। अपने समस्त नए स्टाफ को अनुमति दी कि वे अपने लिए रहने का इन्तजाम हो पाने तक स्कूल के अहाते में ही ठहर सकते हैं। एक पुराने, इस्तेमाल न होने वाले शौचालय को साफ करवाकर उसकी मरम्मत करवाई। दसवीं कक्षा के एक विद्यार्थी के पालक पानी की किल्लत होने पर हमेशा टैंकर भिजवा देते थे। समुद्र का पानी तो खैर स्कूल में आ ही जाता था, जिसकी बाद में हमें सफाई करना पड़ती थी। स्टाफ में कामों का आवंटन बहुत ही नूतन ढंग से किया गया था और इसके लिए स्कूल कर्मचारियों की पत्नियों ने तकरीबन मानद तौर पर लिपिकीय कार्य करने में मदद की। अपने पतियों के साथ रहने की वजह से वे सुरक्षित भी महसूस करती थीं। और इससे उन्हें डी.एड. के लिए अपने प्रायोगिक कार्य करने में भी मदद मिली।

यदि मेरे पास स्वायत्तता होती तो मैं शायद उपयुक्त आवास मिलने तक नए भर्ती हुए शिक्षकों को पास के कुछ होटलों में आराम से और ज्यादा लम्बे समय तक रहने की सुविधा दे देती। और शायद मजबूरीवश मैंने दिल्ली कार्यालय, कलैक्टरेट और स्थानीय प्रशासन की निरन्तर चिरौरी न की होती, उनके चक्कर न लगाए होते – बल्कि बिना किसी देरी के, तत्काल, सबसे पहली प्राथमिकता के तौर पर स्कूल की इमारत और कर्मचारी–आवास बनवाए होते। कम





स्वायत्तता का मतलब था समस्या के निराकरण हेतु निवेदन–पत्र लिखने, विभिन्न कार्यालयों में घूमते रहने तथा अधिकारियों के पास भटकते रहने जैसे कामों में बहुत सा समय बरबाद करना। पर आखिर में उत्तर मिले और केन्द्रीय विद्यालय के लिए जमीन मंजूर हो गई।

पालकों की अपेक्षाएँ और स्वायत्तता

स्कूल के लिए दूरदर्शी कल्पना करने में या उसकी नीति–निर्माण प्रक्रिया में प्राचार्य को कभी भी शामिल नहीं किया जाता। ये बातें तो उसकी पहुँच से दूर, नीति निर्माताओं या विद्वानों के कक्षों में तय की जाती हैं। उसके बाद ही वे जमीनी हकीकत में तब्दील होती हैं। लेकिन प्राचार्य ही है जो इस तरह विरासत में मिली विचारधारा को व्यावहारिक रूप देता है। आज हम उत्कृष्ट शिक्षा की बात करते हैं। पालक जब इस बाबत सोचते हैं तो उनके दिमाग में सिर्फ अंक और ग्रेड होते हैं। वे अपने बच्चों को प्रतिस्पर्धी बनाना चाहते हैं। जब सी.बी.एस.ई. ने प्राइमरी कक्षाओं में अंकों की व्यवस्था को खत्म करके ग्रेड प्रणाली लागू की तो पालकों ने उसका कड़ा विरोध किया था। आज भी, जब वैकल्पिक और लाभकर काम–धन्धों की भरमार हो गई है, पालक चाहते हैं कि उनके बच्चे विज्ञान पढ़ें और इंजीनियर या डॉक्टर बनें। अतः सोच का बदलना बहुत धीमी और पीड़ादायी प्रक्रिया है। जब सी.बी.एस.ई. ने दसवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा खत्म कर दी तो हमारे स्टाफ के एक सदस्य ने कहा, 'आपको पता है, अब मेरा लड़का पढ़ेगा ही नहीं।' हाँ, तुम्हारा लड़का रट्टा नहीं लगाएगा, पर क्यों वह खोज की यात्रा पर निकलकर यह पता नहीं लगा सकता कि उसकी रुचि क्या है? पालक मूर्त किस्म का प्रमाण चाहते हैं तब ही उन्हें तसल्ली होती है कि शिक्षक जो पढ़ा रहे हैं, उनके बच्चे उससे कुछ सीख रहे हैं। निरन्तर और विस्तृत मूल्यांकन के बारे में आशंका है कि वह 'व्यक्तिपरक', और इसलिए 'पक्षपाती' होता है। पालकों की अपेक्षाओं, सामुदायिक अवरोधों, राजनीतिक वातावरण और भौगोलिक हालात के चलते स्कूल–प्रमुख के पास किस प्रकार की स्वायत्तता रहती है?क्या स्कूल–प्रमुख के पास पालकों की अपेक्षाओं से आगे तक या उनके विरुद्ध जाने की स्वायत्तता होनी चाहिए?

यदि हमें दूर फैले क्षेत्रों की जरूरतें पूरी करनी हैं तो राजनैतिक उथल–पुथल और सामुदायिक बाधाओं के बीच भी स्कूल–प्रमुख को अपनी स्वायत्तता और दूरदर्शिता का तारतम्य इन हालात के साथ अबाध रूप से बैठाना होगा। केरल और काठमांडू के स्कूलों में सिर्फ 'क' ही समान नहीं है, बल्कि इनमें यह बात भी समान है कि दोनों जगहों के स्कूल माओवादियों के 'बन्द' के चलते बन्द हो जाते हैं। बच्चों की सुरक्षा प्रमुख चिन्ता होती है तो किसी स्कूल को बन्द करना अकसर मुश्किल होता है। बच्चे सड़कों की बजाय स्कूलों में ज्यादा सुरक्षित होते हैं। आखिर कब स्कूलों को राजनीतिक शरारत की हरकतों से बख्शा जाएगा और स्वायत्तशासी संस्थाएँ बनने का मौका मिलेगा?

2007 में अमेरिकन इंस्टीट्यूट्स् ऑफ रिसर्च तथा टॉमस बी.फोर्डहैम संस्थान ने "द अटॉनमी गैप" शीर्षक से एक रिपोर्ट प्रकाशित की। इसके मुताबिक जवाबदेह व्यवस्थाओं का काफी सारा बोझ प्राचार्य अपने कन्धों पर ढोते हैं लेकिन आमतौर पर उनके पास विद्यार्थियों के प्रदर्शन को वाकई में सुधारने के लिए जरूरी अधिकार नहीं होते। यह बात विशेष तौर से स्कूल में स्टाफ नियुक्त करने की बात पर लागू होती है।

निजी स्कूलों में स्वायत्तता

केन्द्रीय विद्यालयों, राज्य बोर्ड स्कूलों, नवोदय विद्यालयों जैसे सरकारी स्कूलों के कई प्रमुख विलाप करते हैं कि वे अपने कर्मचारियों की नियुक्ति और बर्खास्तगी के सिलसिले में स्वायत्त नहीं हैं। यह स्कूल–प्रमुख के लिए वाकई चिन्ता का विषय है क्योंकि बहुत–सा कीमती वक्त स्टाफ के लोगों के रवैये और क्षमताओं को बदलने या बढ़ाने के प्रयास में चला जाता है, जबकि यही समय शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए तथा स्कूल के स्वप्न को हकीकत में बदलने में लगना चाहिए था।

कुछ निजी स्कूलों में प्राचार्यों के पास यह स्वायत्तता है। लेकिन इन स्कूलों को भी कर्मचारियों द्वारा नौकरी छोड़ देने की ऊँची दर के कारण चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। लेकिन उनकी यह समस्या तब तक रहती है जब तक कि उनकी मजबूत आर्थिक बुनियाद नहीं डल जाती और वे अपने कर्मचारियों को प्रतिस्पर्धात्मक वेतन नहीं देने लगते। ये स्कूल अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए भारी–भरकम शुल्क देने वाले पालकों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यह जरूरी है कि स्कूल पालकों के सामने सेवाओं की एक अच्छी–खासी सूची रखें – शिक्षा, खेल, गतिविधियाँ, और स्कूली शिक्षा के बाद देश के एवं देश के बाहर स्थित प्रतिष्ठित कॉलेजों में दाखिले का वायदा। उत्पादन–टकसाल बनना इन स्कूलों की जरूरत बन गई है – यहाँ से बेहद सफल विद्यार्थी, महान खिलाड़ी और बहुआयामी प्रतिभा वाले सुपरमैन पैदा होते रहने चाहिए। ऐसे

> *स्कूल के लिए दूरदर्शी कल्पना करने में या उसकी नीति–निर्माण प्रक्रिया में प्राचार्य को कभी भी शामिल नहीं किया जाता। ये बातें तो उसकी पहुँच से दूर, नीति निर्माताओं या विद्वानों के कक्षों में तय की जाती हैं। उसके बाद ही वे जमीनी हकीकत में तब्दील होती हैं। लेकिन प्राचार्य ही है जो इस तरह विरासत में मिली विचारधारा को व्यावहारिक रूप देता है।*

स्कूलों के प्राचार्य अकसर अपनी प्रबन्धन कमेटी और पालकों के बीच फँसे हुए, जबरदस्त दबाव में काम करते हैं। इसलिए हैरत नहीं कि वे शिक्षा का अधिकार कानून से अपनी स्वायत्तता पर गम्भीर खतरा महसूस करते हैं! वंचित तबकों के बच्चों को लेने की बाध्यता की वजह से दाखिले की अपनी कसौटी को 'हल्का' करना पड़े तो वे गुणवत्ता कैसे सुनिश्चित करें?उनके पास इस कानून का विरोध करने के तर्कसंगत कारण हैं। वे स्वायत्तता के बारे में नहीं बल्कि अपनी देखरेख में आए बच्चों के हित के बारे में सोच रहे हैं। वे उन कुशलताओं और योग्यताओं के बारे में भी चिन्तित हैं, जिनका शिक्षक के पास होना आवश्यक है ताकि वह कक्षा के भीतर विविधता के चकरा देने वाले आयामों को सम्भालने के लिए और समावेशी वातावरण बना पाने के लिए तैयार हो। सुविधाहीन विद्यार्थियों के दाखिलों की प्रक्रियाओं को लेकर आर.टी.ई. प्रावधानों में स्पष्टता नहीं है। साथ ही क्षमता के स्तरों में अन्तर के साथ काम करने में जमीनी स्तर की कई चुनौतियाँ हैं। मूल्यांकन के लिए भी ऐसे मापदण्ड तय होने होंगे जो बोर्ड के मुताबिक और विद्यार्थी की क्षमता के दायरे में हों। इस प्रक्रिया की शुरुआत करने में आने वाली प्रारम्भिक समस्याओं ने अचानक ही प्राचार्यों को बहुत कठिन स्थितियों में ला खड़ा किया है।

असम में किए गए एक जमीनी शोध से पता चलता है कि स्कूली शिक्षा के सभी स्तरों पर प्रधानाध्यापक की भूमिका को बस इस तरह देखा जाता है कि उसे कुछ तय कार्य करने होते हैं जिनका शिक्षा विभाग द्वारा उसे दी गई शक्तियों के माध्यम से किया जाना अपेक्षित है। ये कार्य इस प्रकार हैं: (क) प्रशासनिक, यानी स्कूल का रोज का प्रशासन, जिसमें संस्था चलाने की प्रक्रिया से सम्बद्ध सभी गतिविधियाँ और प्रशासनिक पहलू शामिल रहते हैं; (ख) वित्तीय, यानी स्कूल के खातों एवं नकदी–बही का रख–रखाव; निधि इकट्ठा करना; स्टाफ में वेतन का वितरण, आदि; और (ग) शैक्षणिक, यानी कक्षा में होने वाली पढ़ाई तथा स्कूल के स्टाफ की निगरानी। इस दृष्टिकोण को शिक्षा अधिकारियों द्वारा व्यवस्थित एवं अनवरत प्रयास के माध्यम से विस्तार दिए जाने की जरूरत है ताकि प्रधानाध्यापकों को मौजूदा दशा में सुधार करते रहने की स्थिति से आगे जाकर स्कूल–विकास कार्यक्रमों को ज्यादा प्रभावशाली ढंग से लागू करने में मदद मिल सके।

हमें गम्भीरता से एक ऐसी व्यापक प्रक्रिया निर्मित करने की जरूरत है जिसके माध्यम से प्रधानाध्यापक भी नीति–निर्माण समूहों का हिस्सा बन सकें। स्कूलों के लिए दूरदर्शी लक्ष्य और योजनाएँ बनाने के कार्य में इन लक्ष्यों और योजनाओं को हकीकत में बदलने वाले प्राचार्यों, प्रधानाध्यापकों को शामिल करना बहुत जरूरी है। आखिर वे लोग ही इस स्वप्न को जमीनी अनुभवों के गलियारों में से लेकर जाते हैं। बलपूर्वक बदलाव करने से उसी तरह की प्रतिक्रियाएँ सामने आएँगी जैसी आर.टी.ई. प्रावधानों को लेकर निजी स्कूलों के प्राचार्यों के कड़े विरोध में आई हैं। प्रधानाध्यापकों के सामने आने वाली चुनौतियों की हकीकत को स्वीकार करना और उन्हें बदलाव के लिए तैयार करना तो बस पहला कदम है।

References:

Role of Head teachers in School Management in India : Case Studies from Six States : Research coordinated by R. Govinda : Asian Network of Training and Research Institutions in Educational Planning : (ANTRIEP) in collaboration with The European Commission.

निवेदिता बेडदुर अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी रिसोर्स सैन्टर, बंगलौर की एकैडमिक्स एवं पैडागॉजी टीम के साथ एक विशेषज्ञ के रूप में कार्यरत हैं। उन्होंने अँग्रेजी भाषा एवं साहित्य में एम.फिल. की डिग्री हासिल की है। उन्होंने 27 वर्षों तक केन्द्रीय विद्यालय संगठन में शिक्षिका, उप प्राचार्य और प्राचार्य की हैसियत से, तथा डॉ. डी.वाय. पाटिल एकैडमी'ज़ शान्तिनिकेतन, कोल्हापुर की प्राचार्य के रूप में काम किया है। उनकी सेवाओं के मद्देनजर उन्हें मानव संसाधन मंत्रालय की ओर से 2004 में इन्सेन्टिव अवॉर्ड फॉर टीचर्स दिया गया।

निवेदिता ने केन्द्रीय विद्यालय संगठन की संस्थानिक पत्रिका, 'संगम' के लिए लेख और कविताएँ लिखी हैं। उन्होंने महाराष्ट्र राज्य बोर्ड पाठ्यक्रम के लिए कार्यपुस्तिकाएँ भी लिखी हैं। वर्तमान में वे आठवीं कक्षा के लिए संरचनात्मक एवं अभिव्यक्तिशील व्याकरण पुस्तक लिख रही हैं, जिसे एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका द्वारा प्रकाशित किया जाएगा। उनकी रुचि के क्षेत्र हैं, अँग्रेजी भाषा–शिक्षण, शिक्षक–प्रशिक्षण और शोध। उनसे nivedita@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।